



Sanvahak (संवाहक)

An International Peer Reviewed, Refereed, Indexed, Multidisciplinary (All Discipline/Subjects), Multilingual (All Languages) & Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)

IIFS Impact Factor-5.25

Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2026

Page No.- 46-50

©2026 Sanvahak

DOI : 10.71037/sanvahak.v2i3.07

<https://sanvahak.gyanvividha.com>

Author's:

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़.

Corresponding Author :

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़.

भारतीय सांस्कृतिक चिंतन के आधारभूत तत्त्व

सारांश : भारतीय ज्ञान परम्परा में मानवीय बौद्धिकता एवं अनुभव की एक समन्वित परम्परा एवं निरन्तरता है। जो विभिन्न क्षेत्रों के विचारकों रचनाओं एवं सिद्धान्तों से पुष्ट है। भारत की संस्कृति केवल धर्म, पूजा-पद्धति, भाषा, वेशभूषा अथवा त्योहारों तक सीमित नहीं है। भारत बोध के लिए यहां की सांस्कृतिक विरासत, दर्शन एवं धर्म को समझना आवश्यक है। प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन किन आधारभूत विचारों पर निर्मित हुआ है, वे विचार आज भी हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा वैश्विक जीवन को किस प्रकार दिशा दे सकते हैं – इन विषयों पर विमर्श किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन के मूल आधारस्तम्भों यथा – सततता, सहिष्णुता, विचार स्वातन्त्र्य, दुःखों से निवृत्ति की भावना, भेद से अभेद की प्रवृत्ति, लोक एवं शास्त्र का अद्भुत समन्वय, पारभौतिकता, कर्तव्यपरायणता, ज्ञान केन्द्रितता, लोकमंगल की भावना के आधार पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

कुंजी-शब्द : अविच्छिन्नता, पारभौतिकता, ज्ञानकेन्द्रितता, विश्व-कल्याण, मुक्ति, अभेद।

1. संस्कृति से आशय : 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक कृ (डुकृञ्) धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर हुई है। तदनुसार संस्कृति से तात्पर्य परिष्कारपूर्वक सम्यक् रूप से सम्पादित उन कार्यों से है, जिनका सम्बन्ध मनुष्य के शरीर, प्राण, मन, बुद्धि आदि से होता है तथा जिनके माध्यम से मनुष्य के मानवीय गुणों का प्रकटीकरण होता है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है, जो निरन्तर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित होती रहती है। वर्तमान पीढ़ी का यह दायित्व होता है कि वह प्रयासपूर्वक इस विरासत को भावी पीढ़ी तक पहुँचाए तथा उसे संस्कारित रूप में हस्तान्तरित करे। सामान्यतः समाज में रहने वाले शिष्ट मनुष्यों के सभी साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं कलात्मक विचारों और कार्यकलापों को संस्कृति के

अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ न होकर अनेक व्यक्तियों द्वारा किया गया एक बौद्धिक प्रयास है। अतएव संस्कृति किसी देश के नागरिकों का शताब्दियों में किया गया कार्यपरिणाम है।

अतः संस्कृति हमारे जीवन का वह दर्शन है, जिसे हमने प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने, आवश्यकता पड़ने पर उस पर विजय प्राप्त करने तथा मानवता की अनुभूति करते हुए सत्य की खोज के माध्यम से मानव बनने के प्रयास में विकसित किया है। यह जीवन-दर्शन हमारे व्यक्तिगत जीवन तथा राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक पक्ष में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। हमारे आचरण, खान-पान, वेश-भूषा, साहित्य, कला, दर्शन, सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन, शिक्षा, विज्ञान, इतिहास आदि सभी क्षेत्रों में संस्कृति की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इस प्रकार भारत और भारतीय राष्ट्र के समग्र व्यक्तित्व में भारतीय संस्कृति के विविध रूप स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं।

“किसी देश, जाति तथा समाज के विशिष्ट पुरुषों के विचार, कार्य, वचन, आचार, व्यवहार तथा उनके द्वारा संस्थापित परम्पराएँ ही उस देश, जाति आदि की संस्कृति का निर्माण करती हैं। संस्कृति के मूलतत्त्व सुदूर प्रदेशों में एक से होते हैं, किन्तु देश-काल की विभिन्नताओं से संस्कृति में भी भेद उत्पन्न हो जाते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राबर्ट वीरस्टीड का कहना है-‘यह संस्कृति ही है, जो एक व्यक्ति को अन्य सब व्यक्तियों से, एक समूह को अन्य सभी समूहों से और एक समाज को दूसरे समाजों से पृथक् करती है।’ वस्तुतः संस्कृति मानव जीवन के उन समस्त तत्त्वों की समष्टि का नाम है, जिनकी धर्म और दर्शन से उत्पत्ति होकर कला-कौशल, समाज तथा व्यवहार में परिणति हो जाती है।”

2. भारतीय संस्कृति : भारतीय संस्कृति की दीर्घ प्रवाही सनातनता का रहस्य है जो कि सीमा को लांघ कर असीम का स्पर्श करती है। अज्ञात से ज्ञात की ओर, देह से आत्मा की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर, भेद से अभेद को ओर सतत गतिशील है।

भारतीय संस्कृति गंगा की तरह निरंतर प्रवाही, समुद्र की तरह विशाल है और गिरि-शिखरों की तरह उदात्त है। वह विद्या-अविद्या, श्रेय-प्रेय, अभ्युदय-निश्रेयस, द्यावा पृथिवी, सभी को आत्मसात करती हुई विश्व के कोने कोने को ज्योतिमय करती आ रही है। यह विरोधों के भूकम्पों, आक्रमणों के झझावातों और नाश के अग्रिकाण्डों के बीच नये नये रूपों में अक्षयवट की तरह प्रत्येक प्रलय के बाद पुनः हरीभरी होती रही है।

संस्कृति का एक विचार पक्ष है- जहाँ दर्शन और चिंतन की विविध धाराएँ हैं, साथ ही अन्तः प्रज्ञा एवं सम्बोधि के उच्च गिरिशिखर भी हैं। दूसरी ओर - साहित्य एवं शिल्प, कला एवं संगीत के प्रवाहमान निझर - जिनकी कलकल नादिनी ध्वनियाँ संयमित शिष्ट, विशिष्ट जन और कोटि- कोटि सामान्य मनुष्यों के हृदयों को आप्लावित करती हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में मानवीय बौद्धिकता एवं अनुभव की एक समन्वित परम्परा एवं निरन्तरता है। जो विभिन्न क्षेत्रों के विचारकों रचनाओं एवं सिद्धान्तों से पुष्ट है। यहाँ अनेक विद्याओं में शास्त्र गढ़े गये यथा दर्शन, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, तर्कशास्त्र, खगोलशास्त्र, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, रसायनशास्त्र, कृषि-शास्त्र आदि जो इस परम्परा को परिपुष्ट करते हैं। यहाँ संरचना की सिद्धान्तीय पद्धति एवं मूर्ततत्त्वों की विवेचना मूल रूप से निहित है। मूल रूप से बीजतत्त्व में निहित विशेष स्वरूप का प्रस्फुटन इस ज्ञान परम्परा की विशेषता है।

3. भारतीय सांस्कृतिक चिंतन के आधारभूत तत्त्व

3.1 अविच्छिन्नता : सुदूर वैदिककाल से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित यह धारा का अपने अतीत से अद्भुत तारतम्य है। यथापाश्चात्य दार्शनिक परम्परा आज अपने मूल से विच्छिन्न हो चुकी है जो कि आदर्शवाद से आज मार्क्सवाद पर जा टिकी है। भारतीय दर्शन की धारा उस पुण्यशिला गंगा के समान है, जो अनेक क्षुद्र नद तथा विपुलकाय नदियों के जल में परिपुष्ट होती हुई शुष्कस्थानों को जलाप्लावित तथा क्षेत्रों को शस्यसम्पन्न बनाती हुई अपने निश्चित गन्तव्य स्थान की ओर समभाव से सदैव बहती रहती है।²

भारतीय दार्शनिक विचारों की शुद्धता, व्यापकता एवं सार्वभौमिक स्वीकार्यता के कारण अन्य संस्कृतियों और धर्मों के सम्पर्क में आने पर भी उनकी मौलिकता पर कोई असर नहीं पड़ा।

3.2 ज्ञान केन्द्रितता : भारतीय संस्कृति में 'ज्ञान' केन्द्रस्थानी है। वेद, उपनिषद् और दर्शन-परम्परा में ज्ञान को विद्या, परमतत्त्व के बोध तथा मोक्ष के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। भगवद्गीता में ज्ञान को सबसे पवित्र बताया गया है।³ जैन दर्शन में 'सम्यक् ज्ञान' त्रिरत्नों में तथा न्याय-दर्शन में तत्त्वज्ञान को निःश्रेयस का साधन माना गया है। वेदान्त में ब्रह्म को ज्ञानस्वरूप स्वीकार करते हुए 'प्रज्ञानं ब्रह्म' कहा गया है। इस प्रकार भारतीय चिन्तन में ज्ञान का उद्देश्य आत्मबोध एवं मुक्ति है, जबकि पश्चिमी दृष्टिकोण में ज्ञान को मुख्यतः शक्ति और प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने के साधन के रूप में देखा गया है।

3.3 विचार-स्वातंत्र्य व सहिष्णुता : भारतीय संस्कृति में विचार-स्वातंत्र्य, सहिष्णुता एवं समन्वय का अनूठा वैशिष्ट्य रहा है। भारतभूमि की समृद्ध प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने यहाँ के चिंतन को ऐहिक आवश्यकताओं से आगे बढ़कर स्वतंत्र एवं पारलौकिक विचार की ओर उन्मुख किया। इसी स्वतंत्र चिंतन के कारण भारत में विविध दार्शनिक सम्प्रदायों का निरन्तर उद्भव एवं विकास हुआ और भिन्न-भिन्न मतों को सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। विभिन्न मतों विचारों के प्रादुर्भाव के बाद भी भारतीय ज्ञान-परम्परा ने सह-अस्तित्व, परस्पर सम्मान, सहिष्णुता एवं समन्वय को महत्त्व दिया।

3.4 भेद का अतिक्रमण : भारतीय संस्कृति में स्थूल तत्त्वों का जानकर सूक्ष्म की ओर जाने की प्रवृत्ति रही है जिसमें भेद से अभेद की ओर जाते हैं। हमारी दार्शनिक परम्परा भौतिकता से पारभौतिकता की ओर जाने की रही है। वस्तुतः जिसे हम भेद कहते हैं वह यहाँ भेद नहीं है। उस अद्वैत परमसत्ता को जानने के लिए यहाँ भेद कल्पित किया गया है। भेद अर्थात् विविधता को दर्शाकर पुनः अन्त में अभेद को स्थापित किया है। भेद भी देखा जाय तो यहाँ उर्ध्वाधर न होकर क्षैतिज है।

3.5 आध्यात्मिकता : हमारी परम्परा में उस पारभौतिक सत्ता को विश्वोत्तीर्ण कहा है। अर्थात् जिसने इस जगत को अपने पर धारण कर रखा है। वह विश्वमय भी है और विश्वोत्तीर्ण भी दोनों है। *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्* में प्रेमचन्द्र इनके बारे में कहते हैं-

**चितिः स्वतंत्राविश्वासिद्धिहेतु।
स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वम् उन्मीष्यति।**

इस प्रकार भारतीय मनीषियों में एक प्रवृत्ति देखी जाती है जो इस पारभौतिकता के प्रति देखी जाती है। अपने अनुभव द्वारा उस तत्त्व को जानने का प्रयास करते हैं। वह परमसत्ता जो इन्द्रिय गम्य नहीं है उसको जानने की ओर प्रवृत्ति है। अद्वैत वेदान्त पारभौतिक सत्ता के रूप में ब्रह्म को परम तत्त्व स्वीकारता है। ब्रह्म को आनन्दस्वरूप एवं अनिर्वचनीय माना गया है - सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।⁴ स्वप्रकाशत्वं चित्त्वम्।⁵ आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्।⁶ सर्व खल्विदं ब्रह्म।⁷ एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।⁸ अर्थात् वह परम ब्रह्म ही परमज्योति, संपूर्ण जगत् का कारण एवं सभी प्राणियों में विद्यमान है।

3.6 जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की ओर उन्मुख : भारतीय दार्शनिकों ने संसार को दुःखमय मानते हुए दुःख के स्वरूप एवं उसके कारणों को जानने का प्रयास किया तथा उससे निवृत्ति के मार्ग का प्रतिपादन किया, जिसे मोक्ष कहा गया है। इसी चिंतन-परम्परा के क्रम में अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का विकास हुआ। चार्वाक दर्शन को छोड़कर लगभग सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों ने मोक्ष अथवा दुःख-निवृत्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना है। व्यावहारिक दृष्टिकोण के कारण भारतीय दर्शनों में आत्मा, ईश्वर एवं मोक्ष जैसे आध्यात्मिक तत्त्वों के साथ-साथ मानव के बन्धन, दुःख, पुरुषार्थ तथा नैतिक उत्थान को भी विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। बौद्ध एवं सांख्य सम्प्रदाय दुःखों के

निवारण के उत्तम उदाहरण हैं 'दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतुः।'⁹

3.7 ऋत, धर्म, सत्य और नैतिकता : ऋग्वैदिक चिन्तन में ऋत का सम्बन्ध उस सार्वभौमिक व्यवस्था से है जिसके अनुसार प्रकृति, देव, मानव और जगत् एक व्यापक व्यवस्था में स्थित हैं। धर्म भारतीय संस्कृति का मूल है क्योंकि इसका संबंध मनुष्य के कर्तव्य से है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताए हैं - धैर्य, क्षमा, आत्मसंयम, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥¹⁰

भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन में सत्य केवल वाणी तक सीमित न रहकर जीवन के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों में कथन हैं - **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** तथा **"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।"** (तैत्तिरीयोपनिषद्)। **"सत्यमेव जयते नानृतम्"**¹¹ सत्य की सर्वोच्च प्रतिष्ठा को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन की आदर्श व्यवस्था को भी नैतिक मूल्यों से अभिन्न रूप से सम्बद्ध माना गया है।

3.8 परिवार और सामाजिक समन्वय : भारतीय जीवन-दृष्टि ने जीवन को चार आश्रमों में व्यवस्थित किया गया है जिनमें रहकर सामाजिक प्राणि अपना जीवन यापन करते हैं एवं जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। गृहस्थाश्रम एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व निर्वहन के लिए परिवार नामक संस्था है जो कि संस्कारों की प्रथम पाठशाला कही गई है। यहां - मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। के संस्कारों का बीजारोपण किया जाता है। व्यापकता एवं समग्र जीवन-शैली भारत की परंपरा रही है -

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥¹²

3.9 गुरु-शिष्य और ज्ञान-परम्परा : वैदिक काल से ही भारत को विश्वगुरु कहा जाता था जिसके पीछे कारण है यहां की शिक्षा प्रणाली। यहां व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास की शिक्षा दी जाती थी। उपनिषदों में गुरु और शिष्य के संवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ईशावास्योपनिषद् में विवेचित है -

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥¹³

इन सभी आधारों के अतिरिक्त प्रकृति और पर्यावरण का साहचर्य, विविधता में समन्वय, लोकमंगल की भावना, कला, साहित्य, विज्ञान और आध्यात्मिकता का समन्वय, लोक एवं शास्त्र का समन्वय, संस्कारित जीवन पद्धति, बहुलतामूलक समाज में एकरूपता का भाव, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद इत्यादि भारतीय संस्कृति की विशेषताएं एवं आधारस्तम्भ रहे हैं। इन विशेषताओं एवं आधारभूत तत्त्वों के कारण यह संस्कृति चिरकाल से विश्व पटल पर सतत एवं अविच्छिन्न रूप से प्रवाहमान है।

4. निष्कर्ष : भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन का समग्र अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति केवल जीवन-पद्धति अथवा सामाजिक परम्पराओं का समुच्चय नहीं, अपितु मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास को समाहित करने वाली व्यापक जीवन-दृष्टि है। इसमें ज्ञान को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है तथा विचार-स्वातन्त्र्य, सहिष्णुता, समन्वय, सत्य, धर्म एवं नैतिक मूल्यों को जीवन का आधार माना गया है। भारतीय दर्शन ने दुःख के स्वरूप और उसके कारणों पर विचार करते हुए मोक्ष को जीवन के परम लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया तथा आध्यात्मिक चिन्तन को व्यावहारिक जीवन-मूल्यों से जोड़ा।

भारतीय संस्कृति की यह दृष्टि किसी एक वर्ग, सम्प्रदाय अथवा भौगोलिक सीमा तक सीमित न होकर

व्यापक मानव-कल्याण की भावना से सम्बद्ध है। विविध मतों के सह-अस्तित्व, सत्य की खोज, प्रकृति के साथ सामंजस्य तथा मानव के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान पर इसका बल इसे वैश्विक सन्दर्भ में भी महत्वपूर्ण बनाता है। वर्तमान समय में भौतिक प्रगति के साथ उत्पन्न नैतिक, सामाजिक एवं मानवीय चुनौतियों के बीच भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन का ज्ञान, सहिष्णुता, आत्मसंयम, सत्य एवं समन्वय पर आधारित दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रासंगिक दिखाई देता है। अतः भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक एवं मानवोन्मुख जीवन-दृष्टि समकालीन विश्व में संतुलित, नैतिक एवं सह-अस्तित्वपरक जीवन के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती है।

5. संदर्भ सूची :

1. भारतीय संस्कृति, किरण टंडन
2. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, पृ. सं., 20
3. भगवद्गीता, 4.38
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/1/1
5. ब्रह्मसूत्र, भामती टीका - वी. मिश्रा, 1/1/1
6. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/6
7. छान्दोग्योपनिषद्, 3/19/1
8. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 6/11
9. सांख्यकारिका, 1
10. मनुस्मृति, 6.92
11. मुण्डकोपनिषद्, 3.1.6
12. हितोपदेश, 1.70
13. ईशोपनिषद्, 1

6. संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. चटर्जी, सतीशचन्द्र, और धीरेन्द्रमोहन दत्त. *भारतीय दर्शन का परिचय*. मोतीलाल बनारसीदास, 2016.
2. टंडन, किरण. *भारतीय संस्कृति*. ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2017.
3. द्विवेदी, कपिलदेव. *वेदों में संस्कृति*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
4. पाण्डेय, राजबली. *हिन्दू संस्कार: सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन*. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
5. शर्मा, चन्द्रधर. *A Critical Survey of Indian Philosophy*. Motilal Banarsidass.
6. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ. *A History of Indian Philosophy*. Cambridge University Press.
7. *ईशावास्योपनिषद्. उपनिषद्-संग्रह*. गीता प्रेस, गोरखपुर.
8. *तैत्तिरीयोपनिषद्. उपनिषद्-संग्रह*. गीता प्रेस, गोरखपुर.
9. *मुण्डकोपनिषद्. उपनिषद्-संग्रह*. गीता प्रेस, गोरखपुर.
10. *श्रीमद्भगवद्गीता*. गीता प्रेस, गोरखपुर.
11. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, *भारतीय-दर्शन*, शारदामंदिर प्रकाशन वाराणसी, 2001.
12. दामोदरन, के., *भारतीय चिन्तन परम्परा*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2001.
13. Kapoor, Kapil, *Literary theory*.